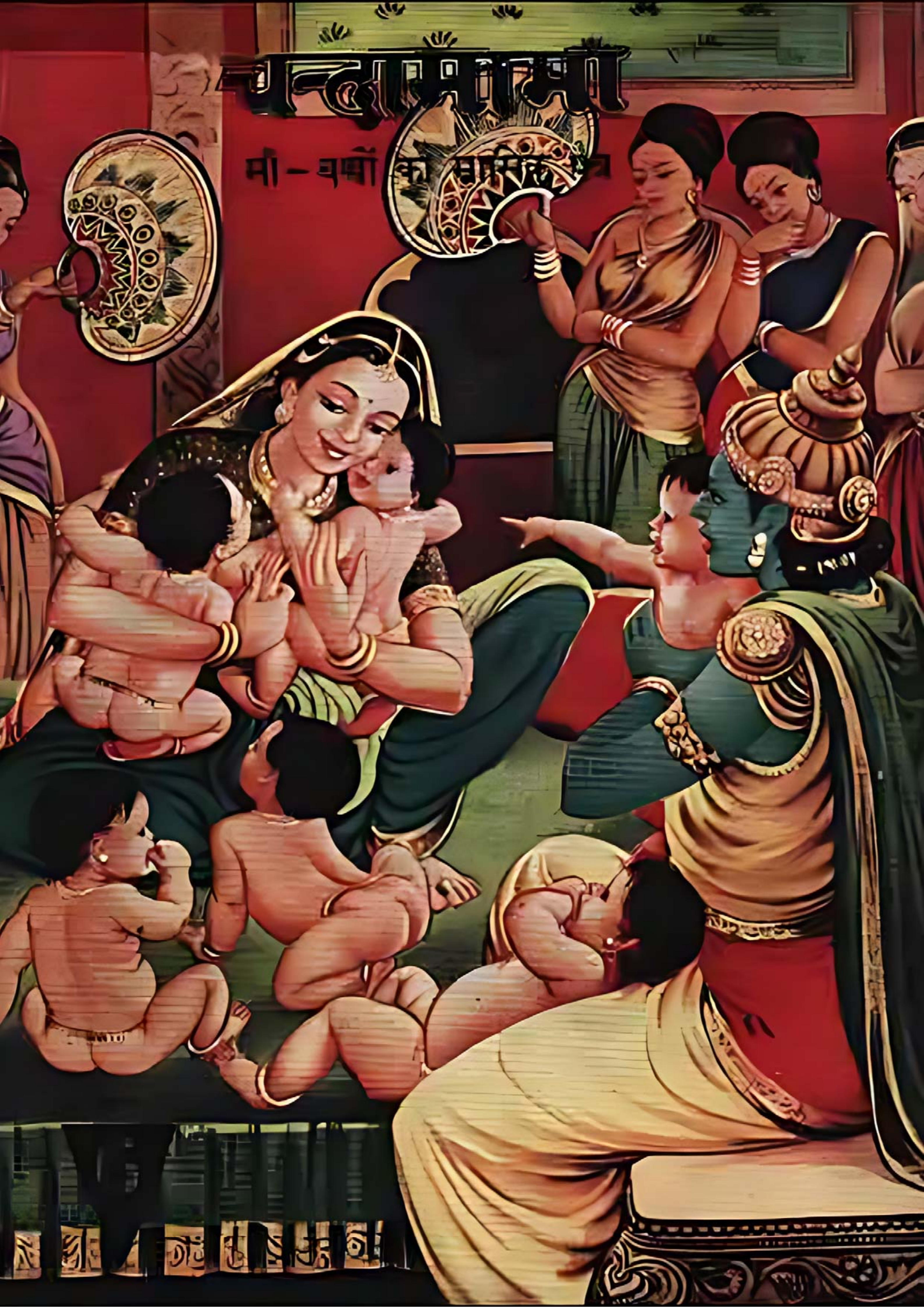




एक बार बोधिसत्व ने काशी नगरी में एक व्यापारी घराने में जन्म लिया। वह रोज पाँच सौ गाड़ियों में माल लाद कर ले जाता और परदेश जाकर व्यापार किया करता था।

उसी नगरी में और एक व्यापारी था जो बहुत बड़ा मूरख था। मगर उसे अपनी बुद्धि का बड़ा गर्व था। एक बार जब बोधिसत्व परदेश जाने के लिए अपनी गाड़ियों को तैयार करने लगा तो दूसरे व्यापारी ने कहा-"मैं भी चलना चाहता हूँ।" तब बोधिसत्व ने कहा-"मित्र ! हम दोनों के एक साथ जाने में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। इसलिए एक के बाद दूसरे का जाना ही अच्छा होगा। बोलो ! पहले तुम जाना चाहते हो कि मैं ही जाऊँ? तुम अपनी सहूलियत विचार कर जवाब दो। बोधिसत्व की बात सुन कर उस दूसरे व्यापारी ने सोचा- "पहले जाने से मेरे दल बालों को ताज़ी तरकारियाँ मिलेगी। बैलों को हरी-भरी घास मिलेगी। मीठा, साफ पानी मिलेगा। सब काम मैं मन के मुताबिक कर सकूँगा। इसलिए पहले जाने में ही फायदा है।"

इधर बोधिसत्व ने सोचा-"बनी-बनाई राह पर चलने में ही आसानी होगी। पहले गए हुए बैलों की चरी जमीन पर फिर से नई पास लहलहा उठेगी। जहाँ जहाँ पानी नहीं मिलता वहाँ वहाँ पहले जाने वालों को कुएँ खोदने पड़ेंगे। उन कुओं से पीछे जाने वाले लाभ उठा सकेंगे। परदेशियों से सौदा करने में बड़ी मुश्किल होती है। पीछे जाने से इसमें भी सहूलियत होगी। क्योंकि पहले जाने वालों ने मोल-भाव पहले ही तय कर रखा होगा। यह सोच कर बोधिसत्व ने कहा-"अच्छा, मैं पीछे ही जाऊँगा।"



इन दोनों व्यापारियों का गम्य स्थान साठ योजन से भी ज्यादा दूर था। बीच में एक विस्तृत मरुस्थल था। कोसों तक तपते बालू के सिवा और कुछ न दिखाई देता था। इसलिए उस ओर जाने वालों को सिर्फ रसद ही नहीं, पानी, ईन्धन वगैरह सब कुछ लाद कर ले जाना पड़ता था।

दूसरा व्यापारी सारा प्रबन्ध करके यात्रा करने निकला और कुछ दिन बाद मरुस्थल में पहुँचा। वहाँ थोड़ी दूर जाने के बाद उसे सामने से एक अपूर्व रथ आता दिखाई दिया। उस रथ में सफेद घोड़े जुते हुए थे। अन्दर एक राजवंशी पुरुष बैठा था। उसके पीछे और भी कुछ लोग थे। वे सभी कीमती कपड़े पहने हुए थे। उन लोगों को देखने से साफ पता चलता था कि बारिश में भीग कर चले आ रहे हैं। रथ के पहियों पर कीचड़ की निशानियाँ थी। उस राज-वंशी पुरुष के हाथों में ताजे अधखिले कमल के फूल थे।

रथ पर चढ़े हुए उस व्यक्ति ने मूरख व्यापारी को रोक कर बातों के सिलसिले में कहा-"भई ! क्या बताएँ, कैसी वर्षा हुई? सच मानो, सारा जङ्गल पानी से भर गया। कहीं जमीन नज़र आती ही न थी ! हाँ, तुम भी तो उसी ओर जा रहे हो। फिर कुप्पों में पानी क्यों ले जा रहे हो !"

अफसोस, नादान व्यापारी ने उस व्यक्ति की बातों को सच मान लिया और कुप्पों के मुँह खुलवा कर सारा पानी फिंकवा दिया। फिर वह आगे बढ़ कर बहुत दूर तक चला गया। लेकिन उसे न वह जङ्गल ही दिखाई दिया और न वर्षा की कोई निशानियाँ ही। उस व्यापारी के दल वालों को प्यास लगने लगी। लेकिन पानी की एक बूँद भी न थी। सब लोगों का गला सूखने

लगा और वे सभी एक एक कर उस भीषण मरुस्थल में पानी की बूँद भर को तरस तरस कर मरने लगे। इतने में वे भूत जिन्होंने राज-पुरुष और उसके अनुयाइयों के रूप में इन अमागे यात्रियों को बहकाया था, दौड़े आए और मजे में इन सब को हड़प जाने लगे। थोड़ी देर बाद यहाँ हड्डियों की ढेरियों के अलावा कुछ भी बच न रहा। हाँ, गाडियाँ पड़ी रह गई। गाड़ियों पर लदा हुआ माल बैसे ही रह गया।



कुछ दिन बाद बोधिसत्व भी उसी ओर रवाना हुआ। माल और रसद लाद कर कुप्पों में पानी भर कर, सारा इन्तजाम कर लिया गया था। मरुस्थल के नज़दीक पहुँचने के बाद बोधिसत्व ने अपने दल वालों से कहा-"भाइयो। मुझ से कहे बिना बूँद मर भी पानी बेकार गिराना नहीं। नहीं तो अनर्थ हो जायगा।"

मरुस्थल के बीच पहुँचने पर फिर वही स्थ पर चढ़ा हुआ राज-पुरुष सामने से आता दिखाई दिया। उसको देखते ही बोधिसत्व सारी बात ताड़ गया। इस बार भी उस मायावी पुरुष ने बोधिसत्य को बहकाने और कुप्पों में का पानी फिंकवा देने की कोशिश की। लेकिन बोधिसत्व ने कहा-"ताजा पानी दिखाई तो दे पहले! फिर बासी पानी फेंक देने में कितनी देर लगती है?" अपनी कोशिश बेकार जाती देख कर मायावी पुरुष अनुयाइयों के साथ चुपके यहाँ से खिसक गया।

लेकिन उस मायावी की बातों पर कुछ भोले भाले गाड़ी वालों ने विश्वास कर लिया था। वे आपस में कहने लगे-"नाहक यह पानी वहाँ तक क्यों ढो ले जाएँ ? फेंक देने से कम से कम बैलों का बोझ हलका हो जायगा।"

तब बोधिसत्व ने उन लोगों से कहा- "तुम लोग कैसे नासमझ हो ? कभी सुना है कि मरुस्थल में कहीं पानी बरसा है? किसी के बदन को ठण्डी हवा लगी थी ? बादल का एक छोटा टुकड़ा भी किसी की नज़र में आया? बिजली चमकती देखी किसी ने? मान लिया कि उस आदमी का कहना सच है ! तो बताओ, बादलों की गड़गड़ाहट कितनी दूर सुनाई देती है? किसी ने सुनी भी थी?"

इन सवालों का वे सभी कुछ भी जवाब न दे सके। फिर चूँ तक न की।

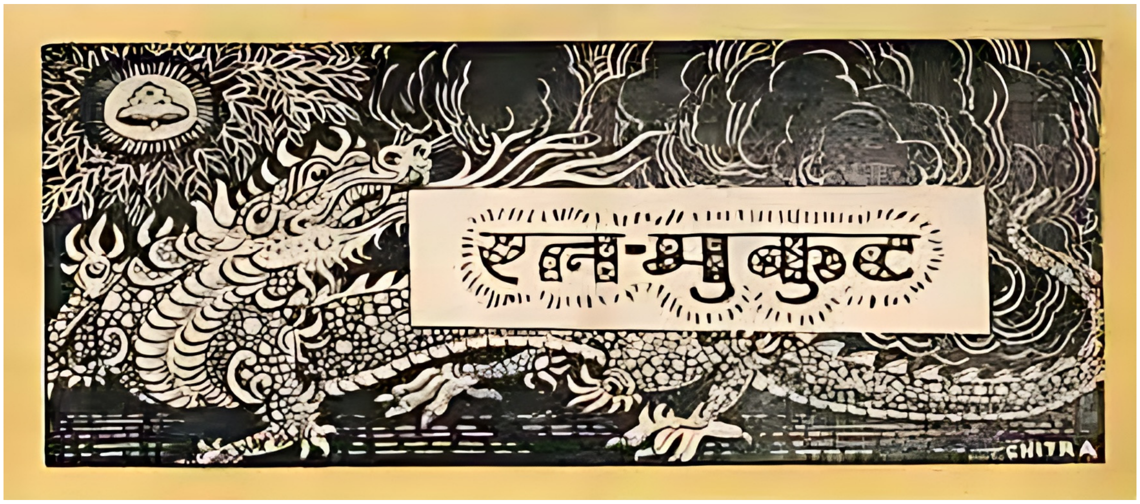
बोधिसत्व ने कहा-"सुनो भाइयो! वे लोग आदमी नहीं थे। वे तो मनुष्य रूप में भूत थे। हम लोगों ने उनकी बात सच मान कर पानी फेंक दिया होता तो आगे जाकर प्यास से तरस तरस कर मरना पड़ता। फिर हम सब को निगल जाने में कितनी देर लगती ! हाँ, पानी की एक बूँद भी बेकार न जाने देना।"

इस तरह बहुत दूर तक जाने के बाद बोधिसत्व को मूरख व्यापारी की गाड़ियाँ पड़ी दिखाई दीं। उन पर लदा हुआ माल किसी ने छुआ तक नहीं था। हाँ, नजदीक ही हड्डियों की ढेरियाँ लगी हुई थीं।

तब बोधिसत्व ने अपने अनुयाइयों से कहा-"देख लिया ! बिना सोचे-समझे हरेक बात पर झट से विश्वास करने का यही नतीजा होता है।"

सवेरा होते ही व्यापारी का माल भी अपनी गाड़ियों पर लाद कर वे लोग सुख से चले और अपने गम्य-स्थान पर पहुँच गए। बोधिसत्व की दूरदर्शिता के कारण उनकी यात्रा सफल हुई। सच है, नीति- कुशल नेता के अनुयाइयों को कभी किसी तरह का कष्ट नहीं होता।





लकिन उसके मन को चैन नहीं था। हर रोज़ रात को वह एक सपना देखता था। सपने में एक आदमी उससे कहता था-"बेटा भानू ! क्या तू मेरी आत्मा को शान्ति नहीं पहुँचाएगा ? बेटा! मेरी आत्मा को शान्ति नहीं पहुँचाएगा ?"

बेचारे चित्रभानु की समझ में नहीं आया कि क्या किया जाय ? क्योंकि ज्यों ज्यों दिन बीतते जा रहे थे, त्यों-त्यों सपने में दिखाई देने वाले उस आदमी की दीनता और व्यग्रता बढ़ती ही जा रही थी।

पहले तो चित्रभानु ने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। उसने सोचा-"सपना ही तो है !" लेकिन जब हर रोज वही सपना दिखाई देने लगा तो उसके मन में कारण जानने की इच्छा प्रबल हो उठी।

आखिर उसने अपने गुरु से सारा माजरा कह दिया और पूछा-"इस में कौन सा भेद छिपा हुआ है ?"

तब मित्रानन्द ने कहा-"बेटा ! इस में एक बहुत बड़ा भेद छिपा हुआ है। सुनो-और यों कहना शुरू किया-'किसी समय देवराज इन्द्र की सभा में एक गन्धर्व रहा करता था। उसके दो पत्नियाँ थीं। हर एक पत्नी से उसके एक एक लड़का था।

वह गन्धर्व इन्द्र की सभा में नौकर था। उसकी नौकरी की मियाद बीस साल थी। मियाद पूरी होते ही नौकरी उसकी सन्तान



को मिलती। निस्सन्तान होने पर वही बीस साल और नौकरी कर पाता। यह उस नौकरी का कायदा था।

हाँ, तो उस गन्धर्व की नौकरी की मियाद पूरी होने को आई। कायदे के मुताबिक नौकरी उसके बड़े लड़के को मिलनी चहिए थी। लेकिन छोटी पत्नी चाहती थी कि नौकरी सौत के लड़के को न मिले; उसी के लड़के को मिले।

छोटी स्त्री भी बड़ी सयानी थी। पति को रिझाना उसके लिए कोई मुश्किल काम न था। उधर बड़ी का लड़का बड़ा मोला-भाला था। उसके लिए माँ और चाची दोनों बराबर थीं। यह उसकी सौतेली माँ अच्छी तरह जानती थी। इसलिए एक दिन उसने उसे बुला कर कहा-"बेटा ! मैं एक व्रत करना चाहती हूँ। उस व्रत में सभी देवताओं को बुलाना है। संसार में जितने तरह के फूल होते हैं, सब से उनकी पूजा करनी है। फूल तो सब तरह के मिल गए। लेकिन नीला गुलाब कहीं न मिला। उसके बिना काम कैसे चलेगा ! इसलिए बेटा ! किसी न किसी तरह नीला गुलाब ला दो। जाओ, तुम्हारी माँ को समझा देने का जिम्मा में लेती हूँ।" इस तरह उसने सौतेले लड़के को नीला गुलाब लाने भेज दिया।

उस दिन जब बड़ी देर होने पर भी बेटा वापस नहीं आया तो बड़े की माँ बहुत व्याकुल हो गई। तब उसकी सौत ने वहाँ आकर कहा-"बहन ! घबराओ नहीं ! वह अपने मित्रों के साथ, अजीब अजीब फूल तोड़ लाने के लिए भूलोक गया है। और कोई बात नहीं।" उसकी बात सुन कर बड़ी की घबराहट कम हो गई।

इसी बीच गन्धर्ब की नौकरी की मियाद पूरी हो गई। बड़ा लड़का घर पर नहीं था। इसलिए छोटी पत्नी ने अपने ही लड़के को इन्द्र

के दरबार में भेजा। उसे ही वह नौकरी मिल गई। बस, छोटी पत्नी फूली न समाई।

सारा हाल जानने के बाद बड़ी पत्नी के मन में तरह तरह के विचार उठने लगे। वह समझ गई कि जरूर इस में कोई न कोई भेद छिपा हुआ है। तुरन्त उसने दिव्य-दृष्टि वाले ऋषि-मुनियों से पूछ कर सच्चा हाल जान लिया। उसे मालूम हो गया कि उसका लाड़ला लड़का नीले गुलाब की खोज में जाने, कहाँ कहाँ भटक रहा है।

उधर उस अबोध बालक ने नीले गुलाब के लिए पहले दिन सारा स्वर्ग छान मारा। लेकिन जब वह दुर्लभ फूल स्वर्ग में नहीं मिला तो दूसरे दिन वह पाताल गया। वहाँ भी नहीं मिला तो एक एक कर चौदहों लोक में खोजने लगा। लेकिन कहीं उसकी आशा पूरी न हुई। अन्त में कुछ लोगों ने कहा-"हमने सुना है कि ऐसा फूल भूलोक में मिलता है। भूलोक जाओ तो शायद तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाय।"

तब वह भोला लड़का भूलोक गया और खेतों-बाड़ियों, वनों उपवनों आदि में सब जगह उस फूल की



खोज करने लगा। उसे कई रङ्गों के गुलाब दिखाई दिए। लेकिन कहीं नीला गुलाब न दिखाई दिया। बेचारे बालक को बड़ी चिन्ता होने लगी कि छोटी माँ का ब्रत इस फूल के बिना अधूरा ही रह जायगा। वह भूख-प्यास भी भूल कर उस फूल की खोज में लगा रहा।

इधर सच्चा हाल जान कर बड़ी पत्नी अपनी सौत पर आग-बबूला हो गई। बोली-"री कलमुँही ! तेरे ही कारण मुझे अपने लड़के से बिछुड़ना पड़ा। न जाने, मेरा मासूम बच्चा, जिससे मुझे देखे बिना एक पल भी न रहा जाता था, कहाँ कहाँ भटक रहा है। न जाने किन बिरानी गलियों की खाक छान रहा है! जा, मैं तुझे शाप



देती हूँ। मेरी तरह तुझे भी अपने लड़के से बिछुड़ना पड़ेगा। जिस भूलोक में मेरा लड़का भटक रहा है, उसी भूलोक में तुम्हें भी जाकर भटकना पड़ेगा। भूलोक जाकर तू एक राजा की पत्नी बनेगी और तेरा लड़का वहाँ फिर तेरी कोख से जनम लेगा। जिस तरह नीले गुलाब के बहाने तूने माँ बेटे को अलग कर दिया, उसी तरह तुम दोनों को भी एक दूसरे से बिछुड़ कर रो-रोकर दिन काटने पड़ेंगे !" बड़ी पत्नी ने अपनी सौत को शाप दिया और लड़के को ढूँढ लाने के लिए तुरन्त अपनी सखियों को भूलोक भेजा।

छोटी पत्नी जानती थी कि बड़ी का शाप अमोघ है। इसलिए वह तुरन्त अपनी सौत के पैरों पड़ कर गिड़गिड़ाने लगी। उदार स्वभाव की होने के कारण बड़ी ने तुरन्त उसे माफ भी कर दिया और शाप से मुक्त होने का उपाय बता कर चली गई।

जब साँझ को गन्धर्व ने इस शाप की बात सुनी तो अपनी लाड़ली छोटी पत्नी को ढाढ़स बँधा कर बोला-"जो हो गया, सो हो गया। अब पछताने से कोई फायदा नहीं। चिन्ता मत करो, भूलोक में भी मैं तुम्हारी खैर-खबर लेता ही रहूँगा।"

शाप के कारण गन्धर्व की छोटी पत्नी स्वर्ग की सारी सुध मुला बैठी और अदृश्य हो गई। उसका बेटा भी माँ की ही तरह अदृश्य हो गया। यही गन्धर्व रमणी, जो स्वर्गलोक से अदृश्य हो गई थी, मानवी का रूप धारण कर पृथ्वी पर एक उपवन में जा उतरी। उधर गन्धर्व ने अपने गले की माला में से दस मोती निकाल कर उन्हें दस दासियों का रूप दिया और एक बीणा देकर उन्हें अपनी पत्नी के पास भेजा।

यों वह गन्धर्व रमणी जिस उपवन में जा उतरी, वह भल्लाण के राजा हर्षपाल का था।

वह उस समय अविवाहित था और व्याह का नाम लेते ही झल्ला उठता था। इसलिए राज के बड़े-बूढ़ों ने मेरे पास आकर किसी तरह उस का मन बदलने की प्रार्थना की। मैंने उनको एक मन्त्रित फल दिया जिसे राजा को अनजाने खिला दिया गया।

राजा ने जिस दिन यह फल खाया उसी दिन गन्धर्व-रमणी उपवन में आ उत्तरी थी। उस रात अचानक नींद टूटी तो राजा को वीणा की मनोहर धुन सुनाई दो। वह तुरन्त उठ कर उपवन में गया। वहाँ गन्धर्व रमणी को देखते ही वह मुग्ध हो गया। हर्षपाल ने, जो व्याह का नाम लेते ही बिगड़ जाता था, राजी-खुशी उस गन्धर्ब-रमणी को अपनी रानी बना लिया।

व्याह हो जाने के बाद राजा हर्षपाल को उस मन्त्र-फल का भेद मालुम हुआ। लेकिन मालूम होने से भी अब क्या हो सकता था? वह अपनी नववधू को खूब चाहता भी था। उसलिए उसे कुछ भी पछतावा न हुआ।" इतना कह कर मित्रानन्द ने गन्धर्व-रमणी की कोख से महीपाल के जन्म लेने, फिर राजा के



मन्दाकिनी से व्याह करने और उसकी कोख से अर्धपाल के पैदा होने तक का बृत्तान्त सुनाया और कहने लगे-"कुछ दिन के बाद मन्दाकिनी की नीयत बदल गई। वह सौतिया डाह और राज्य लोभ के मारे महीपाल को बहुन तङ्ग करने लगी। यहाँ तक कि गन्धर्व-रमणी से अपने बेटे की दुर्दशा न सही गई। उसने अपनी सखियों के साथ सलाह-मशविरा करके सोचा-"मैं लाचार हूँ। सौत का अत्याचार देख कर भी जवान तक नहीं हिला सकती। मेरे यहाँ रहने के कारण मेरे मासूम लड़के की और भी दुर्गत हो रही है। चुरचाप कहीं चली जाऊँ तो वह शायद कुचक्र रच कर अपने



लड़के को गद्दी पर बिठाने की कोशिश करेगी। अच्छा, जो होगा देखा जायगा। मैं चुपचाप कहीं चली जाऊँगी और छुप कर सारी करतूतें देखती रहूँगी!"

इतना निश्चय करके गन्धर्व रमणी अपने लड़के को छोड़ कर एक गुप्त प्रदेश को चली गई। उसकी सखियों ने पहले ही वहाँ पहुँच कर सारा इन्तजाम कर रखा था। बेटे की चिन्ता तो थी, फिर भी गन्धर्व रमणी के दिन वहाँ बड़े सुख से कटने लगे।

उधर अपने ही लड़के को गद्दी पर बिठाने का इरादा करके उसकी सौत मन्दाकिनी अपने पिता और राज-गुरु के साथ मिल कर षड्यन्त्र रचने लगी। इतने में राज में अकाल टूट पड़ा तो उसने उस बहाने सौत के लड़के से पिण्ड छुड़ा लेना चाहा।

उधर गन्धर्व जो पृथ्वी पर अपने पूर्व-जन्म की पत्नी के सारे दुख देख रहा था, एक बूढ़े का रूप घर कर उसके गुप्त-निवास पर पहुँचा। उसने उसे समझा-बुझा दिया और एक सुनहले हंस का रूप धारण करने की शक्ति दी। इतना ही नहीं, उसने उसकी दसों सखियों को मोती बना लिया और फिर अपनी माला में पिरो लिया।

सुनो उसके बाद क्या हुआ ! ठीक समय पर हंस रूप में गन्धर्व रमणी अपने लड़के को बलि वेदी पर से उड़ा ले गई। बस, मन्दाकिनी डर के मारे ज़हर खाकर मर गई। हर्षपाल ने राज-गुरु को दोषी ठहरा कर उसे राज से निकाल दिया। वह जाकर किरात-राज के पुत्र मन्द्रपाल से शरीक होकर षड्यन्त्र रचने लगा। इधर किरात-राज ने अर्धपाल को पाल-पोस कर बड़ा किया। उसका व्याह भी हो गया। इसी अर्धपाल के चित्रभानु नाम का एक लड़का पैदा हुआ।" यों मुनि मित्रानन्द और भी कुछ कहने जा

रहे थे कि चित्रभानु ने चकित होकर उन्हें टोका और पूछा-"क्या कहा? चित्रभानु ?" मित्रानन्द ने जवाब दिया-"हाँ, भैया ! हाँ, तुम्हीं चित्रभानु हो ! भल्लाण का सिंहासन तुम्हारा है। यह सुन कर तुम्हें शायद बहुत अचरज होता होगा। उसी विश्वासघाती राज गुरु के कारण तुम्हें राज-गद्दी से बञ्चित होना पड़ा।" इतना कह कर मुनिवर ने राज-गुरु के विश्वासघात का सारा बृत्तान्त सुना दिया। फिर कहने लगे-"हाँ, सुनो बेटा ! उस दिन जब महीपाल की माता उसे हंस के रूप में उड़ा ले जाने लगी तो बेचारे को बड़ी हैरानी हुई। लेकिन मन ही मन खुशी भी हुई। उसने सोचा-"मैं बलिवेदी से सीधे माता की गोद में पहुँच गया। धन्य है भगवान की लीला !" वह सुनहरा हंस नीले आसमान में उड़ते हुए अनेकों नदी, जङ्गल और पहाड़ पार कर एक द्वीप में जा उतरा। उस द्वीप का नाम मञ्जुल-द्वीप था। उस द्वीप के राजा का नाम तपोधन था।

बस, पल में राजा तपोधन को खबर लग गई कि रत्न-किरीट-धारी एक राजकुमार सुनहरे हंस पर चढ़ कर उसके द्वीप में आ उतरा है। राजा



को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा-"हो न हो, यह बालक जरूर देवताओं का प्रसाद है।" वह बड़ी उतावली के साथ तुरन्त पैदल ही उस जगह जा पहुँचा।

हंस-रूपिणी गन्धर्व रमणी ने राजा से अपने लड़के की कहानी कह सुनाई। मनुष्य की बोली में बोलने वाले उस हंस को देख कर राजा और भी चकित हो गया।

"राजन् ! इस दुधमुँहे बच्चे को मैं तुम्हें सोपती हूँ। इसे आज से अपनी ही सन्तान मान लेना।" यह कह कर वह सुनहला हंस आसमान में उड़ गया। गन्धर्व-रमणी शाप-मुक्त होकर अपने लोक को चली गई।

देवताओं की कृपा से मिले हुए उस बच्चे को राजा तपोधन बड़े लाड़-प्यार के साथ पालने लगा। धीरे-धीरे लड़का सयाना हो गया। राजा ने अपनी इकलौती बेटी से उसका ब्याह भी धूम-धाम से कर दिया। लेकिन बेचारे महीपाल की जिन्दगी की यह बहार ज्यादा दिन न रही।

क्योंकि अड़ोस-पड़ोस के बहुत से राजाओं को गुप्तचरों के द्वारा मालूम हो गया कि अमूल्य रत्न-मुकुट मञ्जुल द्वीप पहुँच गया है। उनमें से एक राजा ने मञ्जुल द्वीप पर चढ़ाई करने की भी ठान ली। यह खबर महीपाल को मालूम हुई तो उसे बहुत खेद हुआ। उसने सोचा -"माँ ने सङ्कट से बचाने के लिए मुझे यहाँ पहुँचाया और राजा तपोधन को सौंप दिया। महाराज ने भी मेरे लिए कोई बात उठा न रखी। यहाँ तक कि मुझे अपना दामाद भी बना लिया। फिर भी मेरे मन को चैन नहीं है। न जाने, भल्लाण में मेरे बृद्ध पिता का क्या हाल है और मेरी माँ अन्तर्धान होकर न जाने, कहाँ चली गई ? सारे अनर्थ का मूल, यह रत्न-मुकुट मेरे पल्ले पड़ गया है। अब तो अन्य राजाओं का ध्यान भी इसकी ओर आकर्षित हो गया है। वे क्या चुप बैठने वाले हैं? कहीं वे सचमुच चढ़ बैठे तो कौन कह सकता है कि नतीजा क्या होगा! मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं। हाँ, इस रत्न-मुकुट को सुरक्षित रखना अनिवार्य है। इस हालत में इसके अलावा और कुछ नहीं किया जा सकता।"

यह निश्चय कर महीपाल एक घने जङ्गल में घुस गया। बीच जङ्गल में, जहाँ आदमी की पहुँच भी मुश्किल थी, उसने एक पेड़ की डाल पर रत्न-मुकुट को जतन से छुपा दिया और लौट गया। उसके बाद--

[सशेष]





राजपूर एक छोटा सा गाँव था जिस में ज्यादातर अहीर ही रहते थे। वे सभी नज़दीक की बस्ती में जाकर, दूध-घी बेच कर अपनी जीविका चलाया करते थे। इसलिए हरेक के पास कई गाय-भैंस थी। इस तरह उस गाँव में जितने ग्वाले थे सभी खूब पैसा कमाने लगे और धीरे धीरे मालदार बन गए। इस में एक राज छुपा हुआ था। वह यही कि ये सभी दूध में पानी मिला कर बेचा करते थे। कोई पूछता तो कहते-"अजी साहब! क्या कहते हैं ? देख लीजिए। कैसा खालिस दूध है !" जब गाँव के सभी बालों का यही हाल था तो बेचारे खरीदने वाले करते क्या ? बस, उसी पानी मिले दूध से काम चला लेते और चूँ तक न करते।

हाँ, राजपुर में ही भोलानाथ नाम का एक ग्वाला था, जो कभी दूध में पानी नहीं मिलाता था। उसके पास दो ही गायें थी जो कुल आठ सेर दूध रोजाना देती थी। बेचारे भोला ने कभी झूठ बोलना नहीं सीखा था। दुहा हुआ दूध ले जाकर बेच दिया करता था। इसलिए उसके ग्राहकों का उस पर बहुत भरोसा था और वे सभी उससे बहुत खुश थे।

अन्य ग्वालों की तरह धोखा न देने और झूठ न बोलने के कारण बेचारे भोला को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। क्योंकि दाम तो उसके दूध का भी वही मिलता था जा दूसरों के पानी मिले दूध का। ग्राहक उसके दूध को सराहते तो बहुत थे, मगर दाम उतना ही देते थे। हाँ, बहुत होता तो दूसरों से एक आना सेर ज्यादा देते। इसलिए बेचारे भोला को इस रोजगार में उतना ज्यादा नफा नहीं होता था जितना कि दूसरों को। क्योंकि दूसरे लोग तो आधा

रामसहाय मिश्र



पानी मिला कर बेच लेते थे। यों किसी तरह भोला का खाना कपड़ा तो चल जाता था; लेकिन बचत कुछ नहीं होती थी। जो कुछ मिलता वह गायों के चारे पानी और पालन-पोषण में खर्च हो जाता।

उधर यह हाल था कि दूसरे ग्वालों की ली घरबालियाँ हर साल नए नए गहने बनवाती थी; हर महीने नई नई साड़ियाँ खरीदती थीं। पिछले साल जिस की फूस की झोंपड़ी भर होती, साल खतम होते होते उसका पक्का मकान बन जाता। हाँ, बेचारा भोला जैसे का तैसा रह गया। उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ।

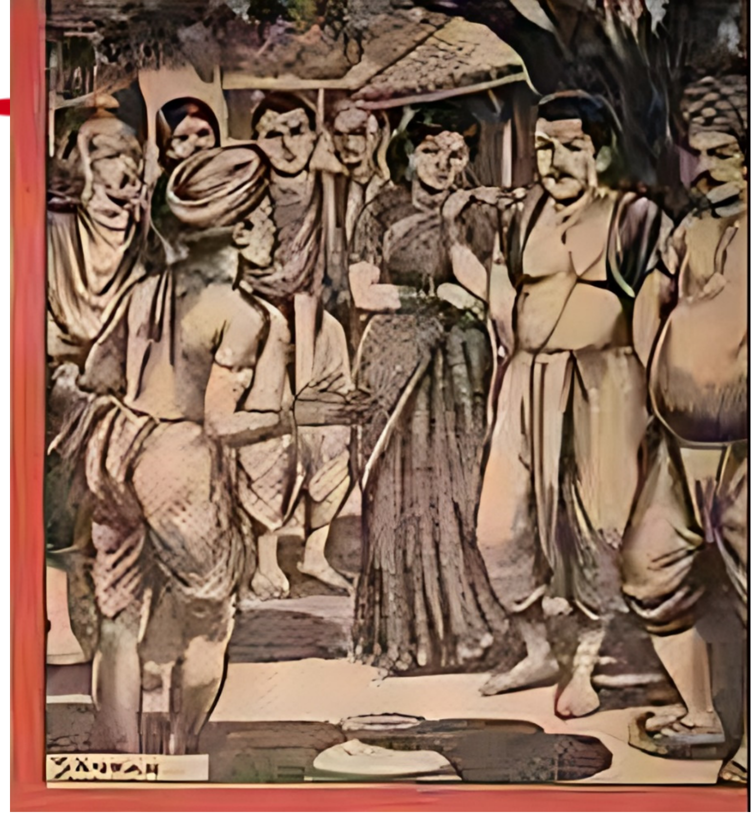
भोला की घर वाली इन सब बातों पर विचार करके मन ही मन धुलने लगी। यहाँ तक कि अपनी फटी-चिटी पुरानी साड़ियाँ पहन कर पड़ोसिनों के सामने जाने मैं भी उसे शरम आने लगी। आखिर एक दिन उसने अपने पति से कहा-"हमें भी अब दुध में पानी मिलाना ही पड़ेगा। नहीं तो हमारी हमेशा यही हालत रहेगी। देखूँगी, कल से दूध में पानी कैसे नहीं मिलाते हो !"

जब घरवाली रूठ जाय तो बेचारे पति-देव करें क्या ? आखिर भोला ने कहा-"अच्छा, दूध में पानी तो मिला दूँगा। लेकिन ग्राहकों के पूछने पर मुझसे झूठ तो नहीं बोला जायगा। बस, सच्ची बात बता दूँगा।" भोला की पत्नी ने पति के मन की बात जान वह बोली-"ठीक है, झूठ बोलने कोई जरूरत नहीं। मैं जैसा कहूँ, वैसे करना! बस हमें भी कल से रोजगार में खूब नफा होने लगेगा।" यह कह कर उसने पति को एक उपाय बता दिया जो उसे भी पसन्द आ गया।

दूसरे दिन भोला बड़े तड़के उठा और दूध बेचने शहर गया। हमेशा की तरह

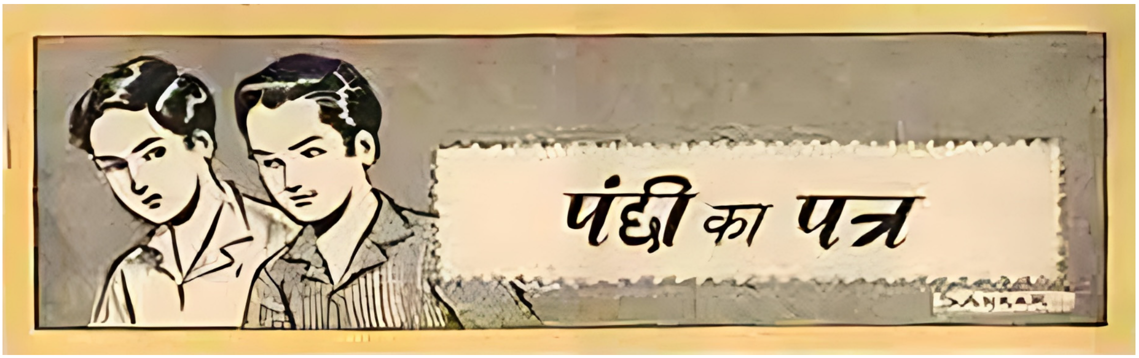
दूध गाढ़ा न देख कर ग्राहकों की घर-बालियाँ भोला से कहने लगीं- "क्यों भैया! अन्त में तुम्हारी भी नोयत डोल गई ? दूध में पानी मिला लाए हो? बड़े सत्यवादी हरिचन्द्र बनते फिरते थे !" भोला उन सब से कहने लगा-"कसम खाकर कहता हूँ मैया। मैने दूध में पानी नहीं मिलाया।" तब वे सब कहने लगी- "वाह भैया! तुम भी खूब सीख गए। चोरी फिर सीनाजोरी।" भोला बोला- "मैया में कभी झूठ नहीं बोलता। सच सच कहता हूँ, मैंने दूध में पानी नहीं मिलाया।"

अन्त में बहुत से लोग जमा हो गए। कुछ लोगों ने क्रोध के साथ कहा- "अरे भई। चुप रहो; साफ तो मालूम होता है कि तुम झूठ बोल रहे हो! दूध देखने से पता नहीं चलता ?" तब भोला बोला-"आप लोगों को विश्वास नहीं तो मैं जाकर अपनी घरवाली को बुला लाता हूँ। वही सारा हाल आपको बता देगी। वही तो अन्दर जाकर हाँडी ले आई थी। कहता हूँ, मैंने दूध में पानी नहीं मिलाया। मगर आप लोगों को विश्वास होता ही नहीं। क्या करू अब ?"



अन्त में बड़ी हुज्जत करने के बाद भोला ने सच्चा हाल बता दिया। उसने कहा कि उसकी पत्नी हाँडी में पानी ले आई थी और उसने पानी में दूध मिला दिया था। इस तरह साबित हुआ कि वह सच ही बोल रहा है। उसने पानी में दूध मिलाया था दूध में पानी नहीं। सत्यवादी भोला अपने नेम से नहीं डिगा। उसकी पत्नी ने जो उपाय बता दिया था यह खूब चल गया।

अब लोगों को सच्ची बात मालूम हो गई तो हँसते-हँसते उनका पेट फूलने लगा। हाँ, भोला के सत्यवादी होने में अब किसी क कोई शक न रही।



मद्रास के किसी मुहल्ले में रामलाल और रतनलाल नाम के दो लड़के रहते थे। दोनों एक ही गली में, अगल-बगल के मकानों में रहते थे। इसलिए बचपन से ही दोनों में दोस्ती पैदा हो गई। दोनों की पढ़ाई एक ही स्कूल में और वाद को एक ही फालेज में हुई। दोनों ने पढ़ा भी एक ही दर्जे तक। दोनों पोशाक भी पहनते थे एक सी, जिस से देखनेवाले कहते थे कि दोनों जुड़वाँ हैं। दोनों एक दूसरे से बिछुड़ कर पल भर भी रह न सकते थे।

दोनों का शील और गुण बहुत अच्छा था और सब लोग उनकी प्रशंसा करते थे।

दोनों की घोड़ी बहुत जायदाद थी। इसलिए पढ़ना-लिखना पूरा करने के बाद नौकरी की खोज में भटकते-फिरने की नौबत दोनों को न पड़ी। चैन से घर पर ही दिन काटने लगे। ब्याह के बारे में दोनों ने क्या सोचा, कुछ पता नहीं; मगर अभी तक दोनों में किसी का ब्याह नहीं हुआ। इसी बीच रामलाल के पिताजी चल बसे और रतनलाल के पिताजी, घर का सारा कामकाज जो इतने दिनों से देख रहे थे, देहात लौट गए। इसलिए एक ही बार दोनों के सर पर अपने अपने घर का सारा बाल टूट पड़ा। इस तरह जीवन में अनेक परिवर्तन होते आए; लेकिन इससे दोनों की दोस्ती में कोई फरक न पड़ा।

इन दोनों मित्रों को देख कर सब लोग ताज्जुब करते थे। यह अपूर्व मैत्री देख कर सब लोगों को खुशी होती थी।

ऐसी हालत में एक बार दोनों मित्रों को सरेबाजार झगड़ते देख कर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। किसी बात पर मतभेद हो गया था और दोनों जोर जोर से

सुखराज मेहरा



चिल्ला रहे थे। फिर सुननेवालों को अचरज क्यों न हो ? किसी को इन दोनों से ऐसी आशा न थी। रतनलाल को रामलाल की निन्दा करते देख कर सब लोग मुँह बाए देखते रह गए। "भई ! तुम हैवान बन गए हो ! तुम्हारे जैसे लोगों के लिए जिन्दगी ही बोझ बन जाती है। मौत ही उनके लिए दया है।" रतनलाल गुस्से में आकर कह रहा था।

रामलाल को मालूम था कि उसका दोस्त क्यों इस तरह उसे फटकार रहा है। लेकिन लोगों को, जिन्हें भेद नहीं मालूम था, दोनों को इस तरह झगड़ते देख कर बहुत अचरज हुआ।

भीड लगती देख कर दोनों दोस्त होश में आ गए और अपनी अपनी राह चले गए।

इस झगड़े को तीन चार दिन हो गए। मगर दोस्तों की जोड़ी कहीं न दिखाई दी। रतनलाल कभी-कभी दिखाई भी देता मगर रामलाल तो जैसे अदृश्य ही हो गया। अड़ोस-पड़ोस में जोर की कानाफूसी चली। लेकिन इस झगड़े की असली वजह किसी की समझ में नहीं आई। लोग मन ही मन तरह तरह की कल्पना करने लगे। लेकिन सत्य क्या है, यह किसी की समझ में नहीं आया।

इस झगड़े के चौथे दिन सवेरे, रामलाल के घर हर रोज काम करने के लिए आने वाली नौकरानी जोर से चीखने लगी। बस, रतनलाल के साथ साथ और भी बहुत से लोग दौड़े आए। आकर देखा क्या रामलाल फर्श पर पड़ा हुआ था। जगह जगह लहू के जमे हुए धब्बे थे। अभागे रामलाल की छाती में एक पैनी छुरी चुभी हुई थी।

देख कर सब लोग घबरा गए। रतनलाल ने पुलिस में खबर दे दी। पुलिस वालों ने

झट आकर जाँच-पड़ताल की। कहीं किसी के आने की निशानियाँ न थी। हाँ, खिड़की खुली हुई थी। पूछ-ताछ करने पर भी कुछ पता न चला। किसी को इस मामले की कुछ जानकारी न थी। हाँ, जिन जिन लोगों ने चार दिन पहले रामलाल और रतनलाल को झगड़ते देखा था, उन्होंने पुलिस से सभी बात कह दी। इस के अलावा पुलिस को यह भी मालूम हो गया कि रामलाल के और कोई दुश्मन नहीं है। इस से सहज ही रतनलाल पर उन्हें शक हो गया। कौन नहीं जानता कि जब जानी दोस्त झगड़ बैठते हैं तो उसका नतीजा कितना खतरनाक होता है ?

पुलिसवालों ने रतनलाल का बयान ले किया। रतनलाल ने स्वयं मञ्जूर कर लिया कि बचपन के दोस्त होते हुए भी वे दोनों उस दिन झगड़ पड़े थे। जब पुलिस वालो ने झगड़े की वजह पूछी तो उसने बताने से साफ इन्कार कर दिया।

इससे पुलिस वालों को उस पर और भी शक हो गया। लेकिन सबूत कुछ नहीं मिला कि उसी ने रामलाल का खून किया था। इसलिए उन्होंने उसे गिरफ्तार नहीं किया।



अब उस मुइले में तरह तरह की अफवाह फैलने लगीं। लोग आपस में कहने लगे कि एक-दो दिन में पुलिस वाले स्तनलाल को गिरफ्तार किए बिना नहीं छोड़ेंगे।

बेचारा रतनलाल ऐसी अफवाहे फैलती देख कर मन ही मन चिन्ता से घुल रहा था। वह बड़े धर्म-सङ्कट में फँसा हुआ था।

ऐसी हालत में एक रात अच्छी चान्दनी छिटक रही थी और मुहल्ले के रहने वाले लड़के सभी चाँद की सफेद रोशनी में नज़दीक के मन्दिर के अहाते में खेल रहे थे। कुछ शरारती लड़के मन्दिर पर चढ़ने और सुराखों में हाथ रख कर उन में रहने

बाले कबूतरों को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। इन बच्चों को देख कर बेचारे कबूतर डर के मारे पंख फड़फड़ा कर भाग रहे थे।

इतने में एक लड़के को एक सूराख में कोई कागज़ मिल गया। उसकी समझ में न आया कि कैसा कागज़ है। इसलिए चुपके से नीचे उतरा और उसे ले जाकर अपने पिता को दिखाया। उसका घर भी रतनलाल और रामलाल के घरों के नज़दीक ही था। उसके पिता ने देखा तो वह रामलाल का अन्तिम पत्र था। उसमें लिखा था-"मैं एक बुरी लत का बेतरह शिकार हो गया हूँ। बड़ी कोशिश करने पर भी उससे पिण्ड न छुड़ा सका। मैंने जुए में सारी जायदाद गँवा दी। यह बात सब से छिपा रखी। आज सारे कर्ज चुकाने पर मेरे हाथ में कानी कौड़ी नहीं बचेगी। मेरे मित्र रतनलाल ने मुझे कई बार समझाया। चार दिन पहले मुझे बुरी तरह फटकारा भी। बड़ी शरम आई मुझे। लेकिन करता क्या ? यह दुर्दशा मुझसे और न सही गई। इसीलिए यह संसार छोड़ कर जा रहा हूँ। आशा है कि मेरा प्यारा दोस्त मुझे समझ लेगा और माफ कर देगा।"

इस पत्र की खबर पल में सारे मुहल्ले में फैल गई। जिस लड़के को यह पत्र मिला था उसके पिता ने उसे पुलिस में दे दिया। साबित हो गया कि लिखावट रामलाल की है और उस ने आत्म हत्या कर ली थी।

लोग सभी शरमाने लगे कि उन्होंने नाहक रतनलाल पर शक किया। अब सब की समझ में आ गया कि रामलाल ने आत्म-हत्या कर लेने के पहले एक पत्र लिख कर निकट ही रख दिया था, जिसे बाद में एक कबूतर ने ले जाकर अपने घोंसले में छुपा लिया।

इस तरह पञ्छी के उस पत्र ने एक आदमी की जान बचाई।





सैकड़ों साल पहले अरावली पर्वत माला पर एक चट्टान ऐसी अजीब शकल की थी जिस को देखने से मालूम होता था, मानों किसी मूर्तिकार ने बड़े जतन से मनुष्य का मुँह उकेर दिया हो। लेकिन वास्तव में उसे किसी मूर्तिकार ने नहीं गढ़ा था। वह विचित्र मुख प्राकृतिक था। उस पहाड़ के आस-पास जितने गाँव थे उनके रहने वाले हर रोज उस मुख को देखा करते थे। उनको उस मुख में उदारता, करुणा, शान्ति आदि अनेक विभिन्न भाव गोचर होते थे। उस मुख का माथा अत्यन्त विशाल था और बुद्धि की प्रखरता को सूचित करता था। बड़ी बड़ी आँखों से मानों प्रीति और करुणा टपक पड़ती थी।

उस विचित्र शिलामुख के बारे में लोगों में तरह तरह की किम्बदन्तियाँ प्रचलित थी। लोग कहा करते थे कि किसी समय ऐसी ही सूरत वाले एक महात्मा रहते थे जिन के कारण लोगों की बहुत भलाई हुई थी। कुछ दिन पहले जब एक बार एक मुनिवर उस पहाड़ पर रहने आए तो आस-पास के गाँव में रहने वाले सैकड़ों लोग उनके पास पहुँच गए। उन में से कुछ लोगों ने उस शिलामुख के बारे में मुनिवर से सवाल किया।

तब थोड़ी देर तक उस मुख तरफ देख कर मुनिवर ने कहा-"भविष्य में इसी शिला मुख से मिलती-जुलती सूरत वाला एक व्यक्ति इस ओर आएगा। वह बड़ा ही ज्ञानी और धर्मात्मा होगा। उसके जरिए लोगों का बहुत उपकार होगा।"

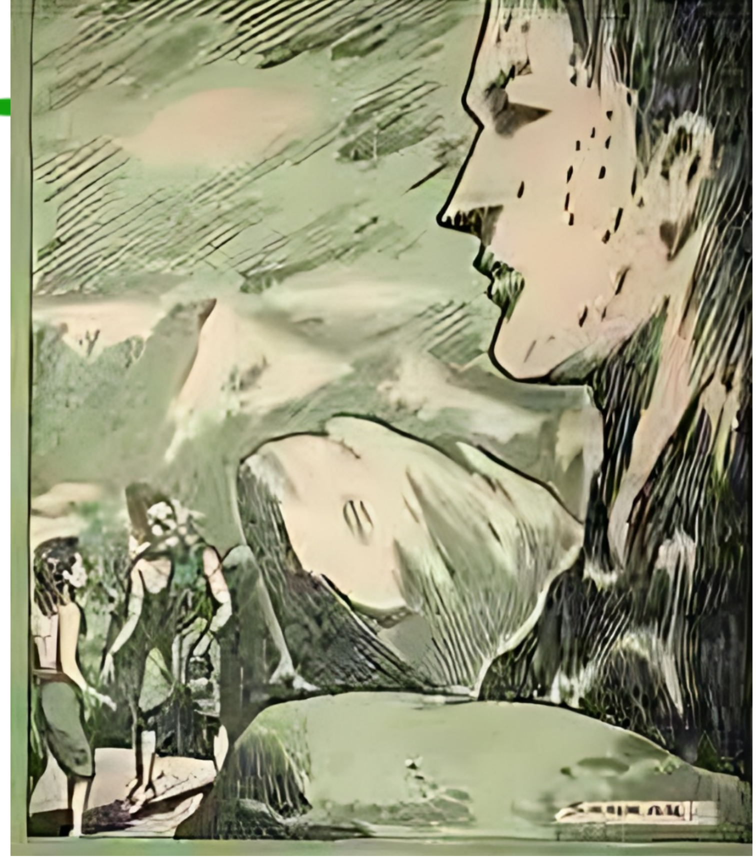
उस दिन से जब जब कोई नया आदमी उस तरफ आता, आस-पास के रहने वाले उसके मुख की तरफ गौर से देखने लगते। लेकिन अन्त में सब को निराशा ही होती। क्योंकि कोई भी ऐसा आदमी उस ओर नहीं आया जिस का मुँह उस शिला-मुख से मिलता-जुलता हो।

रूपकुमार

इस तरह बीसों साल बीत गए। मुनिवर की भविष्यवाणी पीढ़ी-दर-पीढी लोगों तक पहुँचती आई। मगर बहुत से लोगों का उस पर विश्वास न रहा। कुछ लोग तो उसे निरी कपोल कल्पना ही समझने लगे।

लेकिन एक लड़का ऐसा था जिसका उस भविष्यवाणी में विश्वास बना ही रहा। उसका नाम बसु था। बचपन में ही उसके दादा ने उसे गोदी में खेलाते वक्त शिलामुख का किस्सा सुनाया था और मुनिवर की भविष्य-बाणी के बारे में भी बताया था। बसु के बाल- हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। बारम्बार उसे मुनिवर की भविष्यवाणी याद आती रही। उसका प्रगाढ़ विश्वास था कि भविष्यवाणी उसके जीवन काल में ही सफल होगी।

हाँ, तो ऐसा हुआ कि एक दिन एक सन्यासी बसु के गाँव आया। लोगों ने कहा-"ये बड़े ज्ञानी महात्मा हैं। शास्त्रार्थ में इन्हें कोई नहीं जीत सकता। उपनिषद, तर्क, व्याकरण आदि शास्त्रों के तो ये कोविद हैं। लोगों का कहना सुन कर बेचारे वसु के मन में बड़ी आशा हुई। उसने सोचा-"हो न हो, यही वे महात्मा हैं कि जिन के आगमन से लोगों का



कल्याण होनेवाला है; मुनिवर ने भविष्यवाणी इन्हीं के बारे में की थी। यह सोच कर यह तुरन्त उस सन्यासी के दर्शन करने गया।

लेकिन उस सन्यासी का मुख शिलामुख से बिलकुल नहीं मिलता-जुलता था। फिर भी वसु ने बड़े गौर से उस सन्यासी का उपदेश सुना। तब उसे मालम हुआ कि उनको जनता के जीवन के बारे में कुछ नहीं मालूम। वे तो किताबों में रटी हुई बातें बता रहे थे। बचपन से ही साधारण जनता के जीवन में निस्सङ्कोच भाग लेने के कारण बसु को यह जानने में ज्यादा देर नहीं लगी।



इस के अलावा सन्यासी बड़ा क्रोधी आदमी था। उसके सामने किसी को जबान हिलाने तक की हिम्मत न पड़ती थी। अगर किसी के मन में कोई सन्देह उत्पन्न हो जाता और वह सन्यासी से सवाल करता तो उसको बहुत गुस्सा आ जाता। वह कहता- "तुम लोग मूरख हो। मेरी बातें क्या समझोगे ! भैंस के आगे बीन बजाई वह बैठे पगुराई !"

इस तरह कुछ दिन होते होते लोगों का सन्यासी पर से विश्वास उठ गया। उसे कोई पूछने वाला भी नहीं रहा। आखिर सन्यासी वहाँ से चला गया। बेचारे वसु को बड़ी निराशा हुई।

और कुछ दिन बीत गए। एक दिन एक बड़ा शूर-वीर पराक्रमी योद्धा उस तरफ आया। इन महाशय ने अनेकों युद्ध जीते थे और अनगिनत दुश्मनों को धूल चटाई थी। लोगों ने कहा-"अब हमें चोर-डाकू और लुटेरों से डरने की कोई जरूरत नहीं। अब हम निश्चित होकर दिन काट सकते हैं। बसु को फिर आशा हुई। उसने सोचा-"शायद इसी योद्धा के बारे में मुनिवर ने भविष्यवाणी की थी। वह उनको देखने गया। लेकिन इस योद्धा की सूरत शिला-मुख से बिलकुल नहीं मिलती थी।

इतना ही नहीं; यह योद्धा कुछ ही दिन बाद लोगों को बहुत सताने लगा। अपने काम में लगे हुए लोगों को जबर्दस्ती पकड़वा लाता और उनसे बेगार लेता। जो कोई चूँ-चपट करता उसकी जान मुश्किल में पड़ जाती। जो लोग उसकी वीरता की प्रशंसा करते और उसकी सेवा में लगे रहते उनसे भी वह जानवरों की तरह पेश आता। इसलिए लोग अन्त में उससे घृणा करने लगे। कुछ ही दिनों में योद्धा की सारी साख

उठ गई और वह वहाँ से चला गया। बसु ने फिर एक लम्बी साँस ली।

और कुछ दिन बाद लोगों को मालूम हुआ कि एक बड़ा व्यापारी उस तरफ आ रहा है। इन महाशय ने अपने जहाज देश-विदेश भेज कर खूब कारोबार किया था और करोड़ों रुपया कमाया था। लोग कहते ये कि जहाँ वे कदम रखते हैं वहीं देवी लक्ष्मी अपना घर बना देती हैं।

वसु अच्छी तरह जानता था कि उसके चारों और रहने वाले लोग सभी बड़े मेहनती हैं; फिर भी उनके दिन बड़ी गरीबी में कटते है। इसलिए उसने सोचा-"इस व्यापारी के आ जाने से लोगों की हालत सुधर जाएगी। इस व्यापारी का मुँह जरूर शिला मुख से मिलता-जुलता होगा।

लेकिन अन्त में इस बार भी निराशा ही हुई। पहले तो उसकी आशा पूरी होती सी दिखाई दी। ऐसा जान पड़ा, जैसे इस व्यापारी के आने से लोगों को सचमुच बहुत फायदा होगा। क्योंकि इस व्यापारी ने आकर, किसानों को बढ़ावा देकर खेतों में नई नई फसलें लगाई और सारी उपज खुद ही खरीद ली। इससे



पहले तो किसानों को बहुत मुनाफा हुआ। उन लोगों की हालत जरा सुधरने लगी। दूसरे धन्धों वालों को भी व्यापारी के आने से लाभ ही हुआ। नए नए धन्धे चल निकले। इस तरह व्यापारी के यश में चार चाँद लग गए।

लेकिन दो साल होते होते पाँसा पलट गया। व्यापारी ने खूब सस्ता खरीदना शुरू किया। सभी चीजों के भाव गिर गए। इस व्यापारी के सिवा किसानों की उपज खरीदने वाला और कोई न रहा। लाचार होकर उन लोगों को व्यापारी के सामने सर झुकाना पड़ा और उसी के बताए भाव पर चीजें बेचनी पड़ीं। नहीं तो भूखों मरना पड़ता।



इतना ही नहीं; लोगों को खाने-पीने की और रोजाना इस्तेमाल की चीजों की भी कमी महसूस होने लगी। इन चीजों का भाव बढ़ गया। लोगों के लिए पेट भरना भी मुश्किल हो गया। बहुत से ऐसे लोग जो पहले हँसी-खुशी जिन्दगी बिता रहे थे, अब मुश्किल से दिन काटने लगे। यहाँ तक कि अकाल पड़ गया। व्यापारी ने दोनों हाथों रुपया कमाया और अन्त में सोने-चाँदी के बोरे गाड़ियों पर लाद कर एक रात चम्पत हो गया। लोगों के दुख देख कर बेचारे बसु के मन में बड़ी वेदना हुई। उम्र के साथ साथ उसकी सूझ-समझ भी बढ़ती जा रही थी।

और कुछ दिन बाद उस तरफ एक महा-कवि पधारे। इस महा-कवि की जिन्दगी में गहरी पैठ थी। इन्होंने अनेक काव्य लिखे थे। देश-देश में इनका नाम फैला हुआ था। वसु ने सोचा-"मुनिवर की भविष्य वाणी कभी व्यर्थ नहीं जायगी। इस कवि का मुख अवश्य उस शिला मुख के सदृश होगा। लेकिन कवि के दर्शन करने पर उसने देखा कि कवि का मुख शिला-मुख जैसा नहीं है। कवि ने गीत गाए। लोग उनके चारों ओर जमा हो गए और मधुर गीत सुन कर तन्मय हो झूमने लगे। इस कवि को उन्होंने साक्षात देवता ही समझ लिया। राजा-महाराजाओं से भी बढ़ कर उनकी खातिर हुई। लेकिन वास्तव में इन अपढ़ लोगों के प्रति कवि के मन में स्नेह नहीं था। उनके दुख भरे जीवन के प्रति कवि के मन में समवेदना नहीं थी।

कवि ने अपने गीतों में जनता के बारे में लिखा तो था; मगर लोगों से हिल-मिल कर रहना उनके लिए दुस्साध्य था। वे हिल-मिल कर रहते रईसों और उमरावों से

और ऐसे लोगों से जो काम-धाम कुछ नहीं करते थे। काम-काजी लोगों से वे दूर रहते थे। उनके सुख-दुख में भाग नहीं लेते थे। अन्त में वसु ने सोचा-"यह कवि जो कहता है वह नहीं करता। यह अपने गीतों के जरिये लोगों को ठग रहा है। इसके गीत सुन्दर तो हैं, लेकिन उन में सत्य नहीं है।" कुछ दिन बाद लोगों ने कवि की प्रपञ्च जान ली और उसकी खातिर करना छोड़ दिया। कवि वहाँ से चला गया।

बसु खेद के साथ सर झुका कर शिला मुख के सामने जा खड़ा हो गया। मुनिवर की भविष्यवाणी में उसका विश्वास डोल गया। बहुत से वीर प्रतापी, तेजस्वी-ओजस्वी और धनी मानी पुरुष आए। लेकिन किसी के मुँह में वह उदारता और करुणा नहीं दिखाई दी जो शिला-मुख में झलकती थी। इन में से किसी ने जनता की कोई भलाई नहीं की। सब के सब स्वार्थी साबित हुए।

वसु यों सोचते हुए खड़ा था कि कुछ लोग उसी राह से आए। उन लोगों ने शिला मुख पर निगाह डाली और फिर बसु का मुँह ताकने लगे। आश्चर्य ! वसु का मुँह ठीक उस शिला मुख के जैसा था।

यह खबर बिजली की तरह आस-पड़ोस के गाँवों में सब जगह फैल गई। जिन लोगों ने बचपन में शिलामुख की गाथा सुनी थी और धीरे-धीरे उसे भुला बैठे थे, वे सभी उस पुरानी भविष्यवाणी की याद करके बसु को देखने दौड़े आए। आज पहली बार शिला मुख से वसु के मुख का मिलान करके उन्हें बहुत विस्मय होने लगा।

इस तरह मुनिवर की भविष्य वाणी अचूक साबित हुई। बसु ने अनेक विख्यात पुरुषों के दर्शन करके जो जो बातें सीख ली थीं, उनका जनता की सेवा में उपयोग किया। जनता के दुख-मुख में भाग लेकर उसका भी जीवन धन्य हो गया।





सप्राण समाधि

सिखों के नेता गुरु गोविन्दसिंह प्रतापी आदमी थे। उनका नाम सुनते ही विधर्मियों को, खास कर औरङ्गजेब को कँपकँपी आने लगती थी। इन दोनों के बीच जानी दुश्मनी थी। जगह जगह सिखों और मुगलों में मुठभेड़ होती रहती थी। एक बार कीर्तिपुर नामक जगह पर सिखों और मुगलों में लड़ाई छिड़ी। लड़ाई के पहले मुगलों ने दूत के द्वारा कहला भेजा-""पहले यह समझ लीजिए कि आप को किसका सामना करना है। यह छोटे-मोटे जागीरदारों से लड़ना नहीं है; शाहंशाह आलमगीर से लड़ाई मोल लेना है। इसलिए अब भी आप चेत जाइए और इस्लाम कबूल करके बादशाह के पैरों पड़ कर माफी माँग लीजिए। हमारे बादशाह बड़े रहम दिल हैं। वे आप को जरूर माफ कर देंगे।"

जिस समय दूत यह सन्देशा सुना रहा था उस समय गुरु गोविन्दसिंह का लड़का अजित भी वहीं खड़ा था। दूत की बातें सुन कर उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गई। उसने झट म्यान से तलवार खीच ली और बोला-"हमारे धर्म के अनुसार दुत अवध्य होता है। हम तुम्हें छोड़ने को मजबूर हैं। जाओ, जान बचा कर तुरन्त यहाँ से निकल जाओ।" इस तरह अपमानित होकर अपना सा

गुरुमुखसिंह



जब उन्हें गुरु गोविन्दसिंह की माता के अपने दोनों पोतों के साथ भाग जाने की खबर मालूम हुई तो वे तुरन्त पीछा करने लगे। बड़ी दूर तक पीछा करने के बाद अन्त में उन की कामना पूरी हुई। गुजरीबाई तो किसी तरह बच गई। लेकिन गुरु के दोनों पुत्र उन के चंगुल में फँस गए। उन्होंने खुशी खुशी दोनों को ले जाकर सूबेदार वजीरखान के सामने हाजिर किया।

मुँह लेकर दूत लौट गया। अपने सिपहसालार के पास जाकर, उसने खूब नोन-मिर्च लगा कर सारा किस्सा बयान किया। इससे बैर की आग और भी भभक उठी।

कुछ दिन बाद मुगलों ने आनन्दगढ़ पर घेरा डाल दिया। बहुत दिन तक लड़ाई चलती रही। किले में सैनिकों की संख्या बहुत कम थी। अन्त में सिखों की हार निश्चित जान पड़ने लगी। उसी किले में गुरु गोविन्दसिंह की बूढ़ी माता गुजरीबाई और उनके पुत्र भी थे। तीनों चोर दरवाजे से भाग निकले और सरहिन्द की ओर चले। मुगलों ने उस किले पर कब्जा कर लिया।

इन दोनों तेजस्वी बालकों को देख कर वजीरखान को बहुत खुशी हुई। उसने उनसे दुश्मनों का सा बर्ताव नहीं किया। उलटे उन्हें बड़े प्रेम से रखा और उन्हें किसी बात की कमी न होने दी। बालक फतेहसिंह और जोरावरसिंह मौत के मुँह में चैन से दिन काटने लगे।

एक दिन बजीरखान ने मजाक के तौर पर लड़कों से कहा-"बच्चों ! मान लो कि मैंने तुम दोनों को छोड़ दिया। तब क्या करोगे?" "हम लोग सेना जमा करेंगे और तुम्हारे ऊपर चढ़ाई कर देंगे।" दोनों लड़कों ने बिना हिचकिचाए जवाब दे दिया। वजीरखान ने उनकी बात का बुरा नहीं माना। "और हार गए तो ?" उसने हँसते हुए पूछा।

"फिर चढ़ाई करेंगे और हार जाने पर फिर चढ़ाई करेंगे। इस तरह जब तक जीत न जाएँ तब तक फिर फिर चढ़ाई करते ही रहेंगे।" उन वीर बालकों ने निशंशक जवाब दिया।

यह जवाब सुन कर वजीरखान मन ही मन बालकों को सराहने लगा। लेकिन दरबार में जो मुला काजी और उलेमा बैठे हुए थे उन सब को बहुत क्रोध आया। उन लोगों ने बजीरखान पर दबाव डाला और उसे इन बालकों को दण्ड देने पर मजबूर किया। आखिर काजियों ने इन मासूम बच्चों को कसूरवार ठहराया और जिन्दा दीवार में चुनवाने का फैसला किया। वजीरखान ने, जिस को इन बालकों से स्नेह हो गया था, कहा-"बच्चो सुन लिया न काजी का फैसला ? अब भी बोलो ! इस्लाम कबूल कर लो! नाहक जान क्यों गवाते हो ?"

लेकिन वीर बालकों ने अविचल भाव से जवाब दिया-"हम जान दे देंगे; मगर धरम न गँवाएँगे।"

तब वजीर खान बोला-"अभी तुम लोग बच्चे हो। जिन्दगी का लुत्फ क्या जानो ? इस्लाम कबूल कर लो। मैं बादशाह से कह कर तुम्हें माफ



करवा दूँगा। बस, ऐशो-आराम में जिन्दगी कट जाएगी।"

लेकिन बालकों ने कहा-"हरगिज नहीं।" लाचार वजीरखान ने उन्हें दीवार में चुन देने का हुक्म दिया; लेकिन अन्त तक उम्मीद बनी रही कि बच्चे हैं; मान जाएँगे। यहाँ तक कि दीवार गले तक पहुँच गई। बजीरखान ने आखिरी बार अपना सवाल दुहराया। लेकिन उन बच्चों के मुँह से निकला-"नहीं!" दीवार पूरी हो गई। दोनों बालक उस सप्राण समाधि में सदा के लिए सो गए। फतेहसिंह और जोरावर सिंह अमर हो गए।



टपके फल

किसी जङ्गल के नज़दीक एक बगीचा था जिसके मालिक का नाम बीरू था। बीरू अपनी पत्नी फुलिया के साथ उसी बगीचे में ही रहा करता था। काम-काज में फुलिया भी अपने पति की मदद किया करती थी।

हाँ, वह बगीचा बीरू का नहीं था। वह बगीचा था एक रईस आदमी का जो वहाँ से चार-पाँच मील दूर एक गाँव का रहने वाला था। बगीचे में आम, लीची, अमरूद आदि तरह तरह के फल देने वाले पेड़ लगे हुए थे। मगर कायदे के मुताबिक बीरू पेड़ पर लगे फल नहीं तोड़ सकता था। वह वे ही फल चुन कर बेच सकता था, जो पक कर पेड़ से टपके होते। चार साल पहले जब एक भयानक अन्धड़ आया तो बीरू को बहुत मुनाफा हुआ। टपके हुए फलों से जमीन ढँक गई और वीरू को बहुत पैसा मिला। लेकिन वैसे अन्धड़ तो हर साल नहीं आते। इसलिए बेचारे बीरू के दिन बड़ी मुश्किल में कट रहे थे। पेट भरना भी मुश्किल हो गया था। बेचारा इधर कुछ दिनों से जङ्गल में लकड़ियाँ काट कर, उन्हें गाँव में ले जाकर बेचने लगा था। उसकी गैरहाजिरी में बगीचे की देख-भाल उसकी स्त्री कर लेती थी।

बाग के चारों ओर चहर-दीवारी थी और बीचों-बीच बीरू की झोंपड़ी थी। नज़दीक ही पुआल की ढेरी थी और वहीं



दो बैल बँधे रहते थे। इन बैलों की मदद से कुएँ का पानी खींच कर वह बाग के पौधों को सींचा करता था।

मुद्दत से माली का काम करते रहने के कारण वीरू का अब बाग को छोड़ कर जाने का मन नहीं होता था। फिर वह पहले सा जवान भी न था। बाग के मालिक को बीरू का बहुत विश्वास भी था।

एक दिन की बात है कि बीरू जङ्गल जाकर लकड़ियों काट लाया और उन्हें गाँव में बेच कर जरूरी चीजें खरीद कर, घर लौट चला। थोड़ी ही दूर गया था कि कहीं से प्याज की कढ़ी की मधुर बास आई। बीरू के मुँह से लार टपकने लगी। तुरन्त लौट कर उसने प्याज खरीद लिया और मन में कड़ी की कल्पना करते हुए घर चला।

राह में जङ्गल पड़ता था। बीरू जिसका मन सुखद कल्पनाओं में डूबा हुआ था, अचानक ठिठक गया। उसे सामने कोई काली काली डरावनी सी चीज दिखाई दी। नज़दीक जाने पर ही उसे बीरू पहचान सका। एक भयानक भालू गुर्राते हुए बीरू का आलिङ्गन करने को तैयार था।

बेचारे बीरू के होश उड़ गए। उलटे पाँव भागने को भी समय नहीं था। मौत मुँह बाएँ खड़ी थी। आखिर किसी तरह धीरज घर कर वह भालू से बोला-"भालू भैया ! मुझे मारने से आज तो तुम्हारी भूख मिट जायगी; मगर कल क्या करोगे ?"

"कल की बात कौन सोचता है ?" भालू ने जवाब दिया।

"नहीं, नहीं ! जरा सोच-समझ लो। मेरी बात मान जाओ तो हमेशा के लिए तुम्हारे पेट का सवाल हल हो जाय।" बीरू ने कहा।

"अच्छा, बोलो! क्या कहते हो ?" भालू ने पूछा। "जब जब तुम्हें भूख लगे, हमारे

घर आ जाना! मैं तुम्हें भर-पेट खिला दूँगा।" बीरू ने कहा। भालू दिमाग लड़ाने लगा। तब बीरू ने गठरी खोल कर उसे दिखाई और बोला-"देखो ! सब चीजें लिए जा रहा हूँ। रात को मजेदार कढ़ी बनने वाली है। बोलो, आओगे रात को खाने ?"

कढ़ी का नाम सुनते ही भालू के मुँह में पानी भर आया। बोला-"अच्छा, जाओ छोड़ देता हूँ। लेकिन रात को कढ़ी खाने को नहीं मिली तो बस, याद रखना; तुम्हें कोई नहीं बचा सकेगा। हाँ, भला बताओ तो तुम्हारा घर है कहाँ ?"

"वह जो बगीचा दिखाई देता है न ? उसी में।" बीरू ने उसे अपना घर दिखाया।

भालू चला गया। बीरू की जान में जान आ गई। मगर बला अभी नहीं टली थी। रात को भालू फिर आने वाला था। बीरू ने घर पहुँच कर पत्नी को सारा किस्सा सुना दिया। वह बेचारी बड़े सोच में पड़ गई। लेकिन कोई चारा न सूझा।

खैर, किसी तरह कढ़ी तैयार हुई। सोन्धी महक से सारी झोंपड़ी भर



गई। बीरू और उसकी स्त्री से भालू के इन्तज़ार में बैठे न रहा गया। खाने बैठे। अन्त में देखा तो न कढ़ी ही बची थी और न भात ही था। बीरू ने स्त्री से कहा-"फिर से बनाओ!" लेकिन रसोई का सामान कहाँ से आए ? उधर भालू के आने का समय भी हो गया था। बीरू और उसकी स्त्री की जान आफत में पड़ गई। अन्त में दोनों ने झोपड़ी का दरवाजा बन्द कर दिया और बाहर जाकर चुपचाप पुआल की ढेरी में छिपे रहे।

दस-बीस मिनट बाद थोड़ी आहट हुई। बीरू और उसकी स्त्री के होश उड़ गए। और थोड़ा समय बीत गया। भालू के

चलने और गुर्राने की आवाज सुनाई दी। बीरू और उसकी स्त्री ने सोचा- "अब जान नहीं बचेगी!" उधर भालू ने झोंपड़ी के अन्दर प्रवेश किया। लेकिन वहाँ कोई न था। उसे बहुत क्रोध आ गया। उसने सोचा-"यह दुष्ट मुझे चकमा दे गया। अच्छा, अभी चखाता हूँ इसे मजा।"

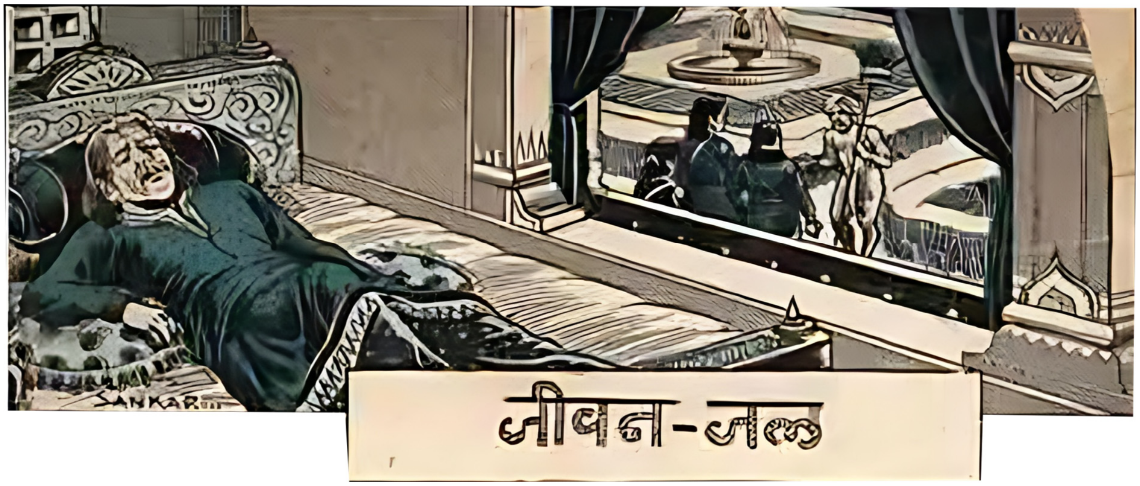
बस, भालू ने मिट्टी की सारी हाँडियाँ फोड़ दीं। चीजें सभी इधर-उधर फेंक दी। कपड़े-लत्ते बिखेर दिए। गुस्से से पैर पटकते हुए खूब उछला कूदा। आखिर मन मसोस कर बाहर निकला। इतने में उसकी नजर बाग के पेड़ों की फलों से लदी हुई डालों पर पड़ी। उसने सोचा-"बच्चू ! अब देखोगे, भालू को चकमा देने का क्या नतीजा होता है।"

बस, और क्या था ? भालू एक एक पेड़ पर चढ़ कर डालों को तोड़ कर सारे बाग को तहस तहस करने लगा। पेड़ों के नीचे की जमीन पर टपके फल बिछ गए। सारे बाग का सत्यानास करके वह फिर झोंपड़ी के पास आया।

लेकिन वहाँ क्या था ? लाचार होकर बाहर निकला। इतने में बीरू की स्त्री को छीङ्क आई। वह इतने जोर से छीङ्की कि भालु ने समझा बन्दुक की आवाज है। वह सिर पर पैर रख कर वहाँ से भागा।

सवेरा होने के बाद ही बीरू और उसकी स्त्री को पुआल की ढेरी में से बाहर आने की हिम्मत हुई। बगीचे में घूम कर देखा तो जहाँ देखो वहाँ फल ! इतने में बगीचे का मालिक भी वहाँ आ पहुँचा। सारी कहानी सुनने के बाद उसने कहा-"अच्छा, कायदे के मुताबिक टपके फल सभी तुम्हारे हैं।" उन फलों को बेचने से बीरू को बहुत नफा हुआ। भालू ने उसका बड़ा एहसान किया।





जीवन-जल

कहते हैं कि किसी समय कुण्डल-नगर में एक राजा रहता था। एक बार यह बीमार पड़ गया। बीमारी भी थी बड़ी अजीब। राजा घड़ों पानी पी जाता था। तरह तरह के शरबत और औषध पी जाता था; मगर उसकी प्यास बुझती ही न थी। यह अमिट प्यास ही राजा की बीमारी थी। आखिर नौबत यहाँ तक आई कि राजा चल-फिर भी न सकता था। बड़े बड़े, वैध-हकीम आए। तरह तरह की दवाएँ आजमाई गई। लेकिन उनसे कोई फायदा न हुआ।

उस राजा की कोई सन्तान न थी। तीन भाँजे थे, जो अनाथ होने के कारण उसी के यहाँ पल रहे थे।

एक दिन की बात है कि ये तीनों भाई उदास मन से राज-महल के सामने के बगीचे में टहल रहे थे। उसी समय बूढ़े माली ने उन्हें देखा और उदासी का कारण पूछा। कारण जान कर उसने कहा-"लड़को ! ये वैद्य लोग कुछ नहीं कर सकते। मैंने बचपन में सुना था कि ऐसी बीमारियों की एक ही दवा होती है। उस दवा को कहते हैं जीवन-जल।"

"अच्छा ! तो यह जीवन- जल कहाँ मिलता है ?" भाइयों ने उतावली के साथ पूछा। "ठीक ठीक तो नहीं मालूम। लेकिन सुना तो है कि पूरब की ओर मिलता है।" माली ने उत्तर दिया।

दूसरे दिन सवेरे ही बड़े भाई ने राजा की इजाजत ली और अपने घोड़े पर सवार

सुनीया देवी

होकर पूरब की ओर चला। बहुत दूर जाने के बाद उसे दो पहाड़ियों के बीच एक घाटी मिली। वह उस घाटी में से जा रहा था कि एक तपस्वी ने जो पहाड़ की एक चट्टान पर बैठ कर तप कर रहे थे, पुकार कर कहा-"बच्चे! कहो, किधर जा रहे हो ?" "अरे बुड्ढे ! तुझे क्या पड़ी है ! जहाँ मन होगा वहाँ जाऊँगा मैं।" नासमझ राजकुमार ने जवाब दिया। "वाह भैया।" तपस्वी ने कहा और चुप हो गए।

राजकुमार थोड़ी ही दूर गया था कि दोनों ओर की चट्टानें उसकी ओर झुकने लगी। बस, वह अपने घोड़े सहित उन्हीं के बीच दबा रह गया।

जब बहुत दिन बीत गए और बड़ा भाई लौट कर नहीं आया तो मँझला घर से निकला और उसी ओर चला। वह भी अन्त में उसी घाटी में पहुँचा।

चट्टान पर तप करने वाले तपस्वी ने उसे भी पुकारा। उस ने भी उसी तरह जवाब दिया। तपस्वी ने कहा "वाह भैया !" और चुप हो गए। मँझला थोड़े ही दूर गया था कि



उसका भी वही हाल हुआ जो उसके बड़े भाई का हुआ था। वह भी चट्टानों के बीच दबा रह गया। यों जब बहुत दिन बीत गए और मँझला भी लौट कर नहीं आया तो छोटा भी घर से निकला। वह भी अन्त में उसी घाटी में पहुँचा। लेकिन ज्यों ही उस की नजर तपस्वी पर पड़ी उसने घोड़े से उतर कर उन्हें विनय के साथ प्रणाम किया। तपस्वी ने वही सवाल किया जो उसके दोनों भाइयों से किया था। तब छोटे ने कहा-"मेरे मामा जो कुण्डल-नगर के राजा हैं, बीमार हैं। यह बीमारी है ऐसी प्यास जो बुझती ही नहीं। इसलिए जीवन-जल की खोज में जा रहा हूँ।"



तब तपस्वी ने छोटे पर प्रसन्न होकर कहा-"अच्छा बेटा! जीवन-जल के लिए तुम्हें और ज्यादा दूर जाने की जरूरत नहीं। देखो, उस ओर जो पहाड़ की चोटी दिखाई देती है न, वहाँ चले जाना। वहाँ तुम्हें पत्थर का एक बहुत बड़ा दरवाजा दिखाई देगा। मैं तुम्हें एक कमण्डल दूँगा। उसे तुम उस दरवाजे से छु लेना। बस, तुरन्त फाटक खुल जाएगा। लेकिन उसी समय दो शेर तुम्हारे ऊपर कूद पड़ेंगे। उन पर कमण्डल का जल छिड़क देना। बस ये पालतू कुत्ते बन जाएँगे। अन्दर जाने पर तुम्हें एक सरोबर दिखाई देगा। उसकी बगल में एक मूर्ति खड़ी होगी। सरोवर से जीवन जल भर लेने के बाद कुछ बून्दे उस मूर्ति पर भी छिड़क देना।"

छोटे ने तपस्वी को और एक बार प्रणाम किया और कमण्डल लेकर वहाँ से चला। थोड़ी ही देर बाद वह उस पत्थर के दरवाजे के पास पहुँच गया, जो कमण्डल लगते ही खुल गया। उसी समय उस पर दो शेर दहाड़ते हुए टूट पड़े। लेकिन कमण्डल का जल छिड़कते ही शान्त हो गए। छोटा राजकुमार सीधे अन्दर चला गया। उसे एक बगीचा और उसके बीचों-बीच एक सरोवर दिखाई दिया। उसने सरोवर का जल मण्डल में भर लिया। मुड़ते ही उसे एक सुन्दरी युवती की मूर्ति दिखाई दी। उसने सोचा-"शायद तपस्वी ने इसी मूर्ति के बारे में बताया था" और कमण्डल के जल की दो बूँदें उस पर छिड़क दी। तुरन्त वह मूर्ति सप्राण होकर एक रूपवती राजकुमारी बन गई। "तुम कौन हो ? तुम्हारी यह हालत क्योंकर हुई?" राजकुमार ने पूछा।"मैं इस प्रदेश की रानी थी। देवताओं के शाप से मेरा राज उजड़ गया और में पत्थर

की मूरत बन गई। आज तुम्हारी कृपा से मै शाप-मुक्त हो गई। मैं और तो कुछ नहीं चाहती। हाँ, वादा करो कि एक साल बाद तुम फिर इधर आओगे। जरूर आना, भूलना नहीं।" उस राजकुमारी ने कहा और चली गई।

छोटा राजकुमार जीवन-जल लेकर घर लौट चला। राह में उसने फिर तपस्वी के दर्शन किए और अपने भाइयों का हाल पूछा। तब तपस्वी ने उसे सारा किस्सा सुनाया और चेताया-"खबरदार ! उन दोनों की नीयत अच्छी नहीं है। लेकिन छोटे राजकुमार के हठ करने पर लाचार होकर उन्होंने उन दोनों दुष्टों को पत्थर की कारा से छुड़ाया। छोटे ने भाइयों को जीवन-जल का सारा बृतान्त सुना दिया। तीनों सानन्द घर लौट चले। वे कुण्डल-नगर से थोड़ी ही दूर पर थे कि दोनों बड़े भाइयों ने कमण्डल में का जल चुरा लिया और उस में खारा पानी भर दिया। बेचारे छोटे को इस विश्वासघात का तनिक भी भान न हुआ।

जब तीनों भाई घर लौटे तो राजा की हालत और भी बिगड़ी हुई थी। छोटे ने कमण्डल में के खारे पानी को



जीवन-जल समझ कर राजा को पीने दिया। पानी की बूँद गले से उतरी भी नहीं थी कि राजा आग-बबूला हो गया। उसने तुरन्त छोटे को राज से निकल जाने की आज्ञा दे दी। छोटे के चले जाने के बाद दोनों बड़े भाइयों ने जीवन-जल निकाल कर राजा को दिया पीते ही राजा चङ्गा हो गया ! वह उन दोनों भाइयों से बहुत प्रसन्न हो गया।

राज से निकाले जाने के बाद छोटा जङ्गल में जाकर रहने लगा। धीरे-धीरे साल बीतने को आया।

उधर उस राजकुमारी ने जिसे छोटे ने प्राण-दान दिया था, नौकरों को बुला कर

हुक्म दिया-"किले के दरवाज़े से एक मील दूर तक सोने की ईंटें बिछा कर राह बना दो। जो उस राह के बीचों-बीच घोड़ा दौड़ाते हुए आयगा, उसी के लिए दरवाजा खोलना। नहीं तो नहीं।"

कुछ दिन बाद बड़ा राजकुमार जिसके मन में इस राजकुमारी से व्याह करने की इच्छा पैदा हो गई थी, घोड़े पर सवार होकर चला। किले तक पहुँचने के बाद जब उसे सोने की राह दिखाई दी तो उसने सोचा-"चमचम चमकती हुई एस सोने की राह पर घोड़ा कैसे दौड़ाऊँ? बगल से होकर चला जाऊँगा।"

उसने सोने की राह की दाई बगल से जाकर किले का फाटक खटखटाया। लेकिन राजकुमारी के नौकरों ने जो छिप कर सारा हाल देख रहे थे, दरवाजा न खोला। मँझला भी उसी तरह यहाँ आया। राह की बाई बगल से जाकर उसने दरवाजा खटखटाया। लेकिन नौकरों ने दरवाजा नहीं खोला।

अन्त में जब साल बीतने को ही था, छोटा राजकुमार घोड़ा दौड़ाते हुए उस राह से आया। उसके मन में तो बस, एक ही चिन्ता थी, राजकुमारी से मिलने की। इसलिए वह सोने की राह के बीचों बीच से सरपट घोड़ा दौड़ा कर फाटक के पास पहुँचा और किवाड़ खटखटाया। नौकरों ने तुरन्त फाटक खोल दिया।

बड़ी धूम-धाम के साथ उस राजकुमारी का छोटे राजकुमार से ब्याह हो गया। अन्त में उन दोनों ने कुण्डल-नगर जाकर राजा का आशीर्वाद माँगा।

जब राजा को सच्चा हाल मालूम हुआ तो उसने छोटे राजकुमार को माफ कर दिया और उसे अपनी गद्दी दे दी। दोनों विश्वास घाती भाइयों को देश निकाला दे दिया गया।



CHANDAMAMA (Hindi) MAY 1953 Regd. No. M. 546



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – ४